SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

श्रीमद्भागवत गीता में योग के स्वरूप का वर्णन

प्रीति चंद्राकर, शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
प्रीति चंद्राकर, शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय,
बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 28/07/2022
Revised on : -----
Accepted on : 04/08/2022
Plagiarism : 01% on 29/07/2022

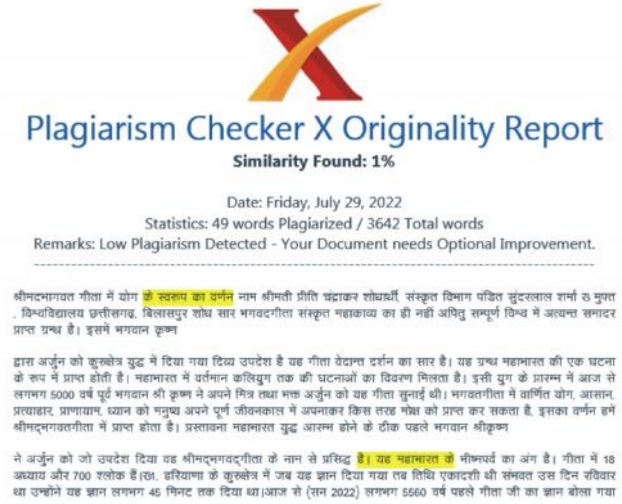

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Friday, July 29, 2022
Statistics: 49 words Plagiarized / 3642 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

श्रीमदभागवत गीता में योग के स्वरूप का वर्णन नाम श्रीमती प्रीति चंद्राकर शोधार्थी, संस्कृत विभाग पंडित सुंदरलाल शर्मा ऊ मुक्त . विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर शोध सार भगवदगीता संस्कृत महाकाव्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त समादर प्राप्त ग्रन्थ है। इसमें भगवान कृष्ण

द्वारा अर्जुन को कुरुक्षेत्र युद्ध में दिया गया दिव्य उपदेश है यह गीता वेदान्त दर्शन का सार है। यह ग्रन्थ महाभारत की एक घटना के रूप में प्राप्त होती है। महाभारत में वर्तमान कलियुग तक की घटनाओं का विवरण मिलता है। इसी युग के प्रारम्भ में आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व भगवान श्री कृष्ण ने अपने मित्र तथा भक्त अर्जुन को यह गीता सुनाई थी। भगवतगीता में वर्णित योग, आसान, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान को मनुष्य अपने पूर्ण जीवनकाल में अपनाकर किस तरह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, इसका वर्णन हमें श्रीमद्भगवतगीता में प्राप्त होता है। प्रस्तावना महाभारत युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले भगवान श्रीकृष्ण

ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वह श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। गीता में 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं।ग्ब. हरियाणा के कुरुक्षेत्र में जब यह ज्ञान दिया गया तब तिथि एकादशी थी संभवत उस दिन रविवार था उन्होंने यह ज्ञान लगभग 45 मिनट तक दिया था।आज से (सन 2022) लगभग 5560 वर्ष पहले गीता जी का ज्ञान बोला गया

शोध सार

भगवद्गीता संस्कृत महाकाव्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त समादर प्राप्त ग्रन्थ है। इसमें भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को कुरुक्षेत्र युद्ध में दिया गया दिव्य उपदेश है। यह गीता वेदान्त दर्शन का सार है। यह ग्रन्थ महाभारत की एक घटना के रूप में प्राप्त होती है। महाभारत में वर्तमान कलियुग तक की घटनाओं का विवरण मिलता है। इसी युग के प्रारम्भ में आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व भगवान श्री कृष्ण ने अपने मित्र तथा भक्त अर्जुन को यह गीता सुनाई थी। भगवतगीता में वार्णित योग, आसान, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान को मनुष्य अपने पूर्ण जीवनकाल में अपनाकर किस तरह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, इसका वर्णन हमें श्रीमद्भगवतगीता में प्राप्त होता है।

मुख्य शब्द

श्रीमद्भागवत गीता, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग.

प्रस्तावना

महाभारत युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वह श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। गीता में 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं।[1] हरियाणा के कुरुक्षेत्र में जब यह ज्ञान दिया गया तब तिथि एकादशी थी, संभवतः उस दिन रविवार था। उन्होंने यह ज्ञान लगभग 45 मिनट तक दिया था।आज से (सन् 2022) लगभग 5560 वर्ष पहले गीता जी का ज्ञान बोला गया था। गीता की गणना प्रस्थानत्रयी में की जाती है, जिसमें उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र भी सम्मिलित हैं। अतएव भारतीय परम्परा के अनुसार गीता का स्थान वही है जो उपनिषद् और धर्मसूत्रों का है। उपनिषदों को गौ (गाय) और गीता को उसका दुग्ध कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उपनिषदों की जो अध्यात्म

विद्या थी, उसको गीता सर्वांश में स्वीकार करती है। उपनिषदों की अनेक विद्याए गीता में हैं, जैसे, संसार के स्वरूप के संबंध में अश्वत्थ विद्या, अनादि अजन्मा ब्रह्म के विषय में अव्ययपुरुष विद्या, परा प्रकृति या जीव के विषय में अक्षरपुरुष विद्या और अपरा प्रकृति या भौतिक जगत के विषय में क्षरपुरुष विद्या। इस प्रकार वेदों के ब्रह्मवाद और उपनिषदों के अध्यात्म, इन दोनों की विशिष्ट सामग्री गीता में संनिविष्ट है। उसे ही पुष्पिका के शब्दों में ब्रह्मविद्या ....[2]

महाभारत के युद्ध के समय जब अर्जुन युद्ध करने से मना करते हैं तब श्री कृष्ण उन्हें उपदेश देते है और कर्म व धर्म के सच्चे ज्ञान से अवगत कराते हैं। श्री कृष्ण के इन्हीं उपदेशों को "भगवत गीता" नामक ग्रंथ में संकलित किया गया है।

गीता में योग का स्वरूप

वही ज्ञान वास्तविक ज्ञान होता है जो ज्ञान मुक्ति के मार्ग की ओर अग्रसरित कराता है। अतः गीता में भी मुक्ति प्रदायक ज्ञान है। इस बात की पुष्टि स्वयं व्यास जी ने महाभारत के शान्तिपर्व में प्रकट किया है। ''विद्या योगेन ऱक्षति'' अर्थात् ज्ञान की रक्षा योग से होती है। श्रीमद्भगवद् गीता को यदि योग का मुख्य ग्रन्थ कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। योग के आदि प्रवक्ता स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् है, इसलिए उन्हें योगेश्वर भी कहा गया है। आदि काल में भगवान् गीता का उपदेश सूर्य भगवान् को दिया, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार योग को ऋषियों ने जाना।

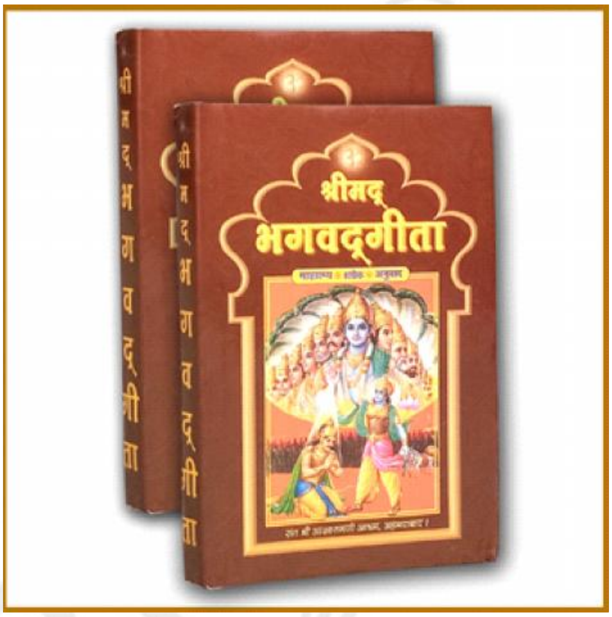

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवाहनहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेै्ब्रबीत्।। गीता 4/1

परन्तु इसके बाद यह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्त प्राय हो गया। अतरू तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसिलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है। श्रीमद्भगवद् गीता के प्रत्येक अध्याय को योग की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार अठारह अध्यायों को क्रमशः निम्न योगों से अभिहित किया गया है, जो इस प्रकार हैः

1. अर्जुनविषाद योग,
2. सांख्य योग,
3. कर्मयोग,
4. ब्रह्मयोग, (ज्ञान कर्म सन्यास योग),
5. कर्म सन्यास योग,
6. आत्मसंयम योग,
7. ज्ञानविज्ञान योग,
8. अक्षरब्रह्म योग,
9. राजविद्याराजग्रह्म योग,
10. विभूति योग,

11. विश्वरूपदर्शन योग,
12. भक्तियोग,
13. क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ विभाग योग,
14. गुणत्रय विभाग योग,
15. पुरुषोत्तम योग,
16. दैवासुरसम्पद् विभाग योग,
17. श्रद्धात्रय विभाग योग एवं
18. मोक्षसन्यास योग।

यदि इन सब का विश्लेषण किया जाए तो प्रत्येक छः अध्यायों में एक नवीन उपदेश है। पहले छः अध्यायों में पाँच की साधना प्रणाली का वर्णन है जिन्हें कर्मयोग के अन्तर्गत रखा गया है। अगले छः अध्यायों में भगवान् ने अपने उपदेश का मूल अथवा गीता हृदय खोल कर रख दिया है तथा अपने शिष्य को दिव्यदृष्टि प्रदान की है इसमें भक्ति योग है। अन्त के छः अध्यायों में भगवान् श्रीकृष्ण ने कुछ विशिष्ट एवं गूढ़ सिद्धान्तों की मीमांसा की है, जिन्हें समझने के लिए योग को पूर्णतः व्यवहार में लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यही ज्ञान योग है। गीता में योग के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है, परन्तु गीता के अन्यान्य योगों में आपाततरू योग के मुख्यतः तीन स्वरूप स्पष्ट दिखते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है– गीता के दूसरे अध्याय में योग के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है किः

''समत्त्वं योग उच्यते''। गीता 2/48

अर्थात् जब साधक का चित्त सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होता है, तब इस अवस्था में साधक का चित्त सुख–दुःख, मान–अपमान, लाभ–हानि, जय–पराजय, शीत–उष्ण, तथा भूख–प्यास आदि द्वन्द्व में समान बना रहता है। इस अवस्था में साधक सभी पदार्थों में समान भाव रखता है। इस अवस्था के कारण उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, सभी दुःख समाप्त हो जाते हैं। इसी समत्त्व भाव का नाम योग है।गीता के दूसरे अध्याय में ही योग की एक अन्य परिभाषा देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैंः

'' योगः कर्मसु कौशलम्''। गीता 2/50

इस कथन का अभिप्राय है फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्म कौशल है। कर्म करते हुए यदि कर्त्ता कर्म में आसक्त हो गया तो वह कर्म कौशल नहीं कहलाता है। कर्त्ता की कुशलता तो यह है कि कर्म करके उसको वहीं छोड़ दिया जाये। हानि और लाभ, जय अथवा पराजय, कार्य–सिद्धि या असिद्धि के विषय में चिन्ता ही न की जाये। कर्म करते हुए यदि कर्त्ता उस कर्म का दास होकर रह गया तो वह कर्त्ता का अस्वातन्त्रय हुआ। कर्त्ता तो स्वतंत्र हुआ करता है।

यदि कर्म ने कर्त्ता को पराधीन कर दिया तो यह कर्म की विजय हुई कर्त्ता की नहीं। कर्त्ता का स्वातन्त्रय तो तब सिद्ध होता है जब कर्त्ता स्वेच्छा से कर्म का और उसके फल का त्याग कर देता है। अतः फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्मकौशल है। दुष्कृत में आसक्ति की अपेक्षा भी सुकृत में आसक्ति को छोड़ना और कठिन है। किन्तु जिसको यह अनासक्ति योग की बुद्धि प्राप्त हो गई, वह दुष्कृत को और विशालतर सुकृत में बन्धक लघुतर सुकृत को – इन दोनों को त्याग देता है इसलिए तू इस अनासक्ति–योग की प्राप्ति के लिए जुट जा। जो लोग इस अनासक्ति योग को प्राप्त कर लेते हैं, वे जन्म के बन्धनों से घबराते नहीं। विपरीत से विपरीत परिस्थितियों की दीवार को तोड़कर पार हो जाते हैं। इसी कुशलता का नाम योग है।

योग की एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिभाषा देते हुए गीता के छठे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– मनुष्य जीवन पर्यन्त दुःखों से संयोग बना रहता है। दुःखों के इसी संयोग का पूर्णतः वियोग हो जाना, दुःखों की सदा के लिए समाप्ति हो जाना ही योग हैः

"दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।" गीता 6/23

क्योंकि जब दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है तो वे पुनः उत्पन्न नहीं होते।गीता में योग शब्द को अनेक अर्थ में प्रयोग किया गया है, परन्तु मुख्य रूप से गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग इन तीन योग मार्गों का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है।

ज्ञानयोग

ज्ञानयोग के माध्यम से गीता उपदेश देती है कि यह समस्त दृश्य जगत् परमात्मा से ही उत्पन्न होता है और अन्त में परमात्मा में ही लीन हो जाता है। अर्थात् ऐसा समझना चाहिए कि सम्पूर्ण भूत प्रकृति से उत्पन्न हुआ है और सम्पूर्ण जगत् का उद्भव एवं प्रलय का मूल कारण परमात्मा है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। गीता 7/6

अब यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ज्ञानयोग का विषय क्या होना चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वह समग्र ज्ञान जिससे जीव परमपद् मोक्ष को प्राप्त कर सके इसलिए मनुष्य को आत्मा, प्रकृति एवं ईश्वर को जानना आवश्यक है, जिसे जानकर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। गीता के सातवें अध्याय में दो प्रकार के प्रकृति अपरा और परा प्रकृति के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी जो प्रकृति है वह अपरा (जड़) प्रकृति है तथा दूसरी परा प्रकृति, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् (चेतन) प्रकृति है। आत्मा के स्वरूप का निरूपण गीता के दूसरे अध्याय में किया गया है। आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि यह आत्मा न तो किसी काल में जन्म लेता है और न ही मरता है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह आत्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और पुराना है। यह शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। गीता 2/20

इसी अध्याय में आत्मा के अन्य स्वरूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है, तथा यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अचल और स्थिर रहने वाला सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। गीता 2/24

यह आत्मा, अव्यक्त है, अचिन्त्य है तथा यह आत्मा विकार रहित है। इसलिए हे अर्जुन! इस आत्मा को उपर्युक्त प्रकार से जानकर तू शोक करने योग्य नहीं है, अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है। इस प्रकार यह आत्मा ऐसी है, यह जानकर इस विषय में शोक करना योग्य नहीं है। आत्मा 'सर्वगत्' अर्थात् सर्वव्यापक है। योग का आचरण करने वाला शुद्धात्मा जिसने अपने आत्मा और इन्द्रियों पर विजय पा लिया है ऐसा श्रेष्ठ पुरुष कर्म करता हुआ भी कर्म में लिप्त नहीं होता। कर्म का लेप न होने के लिए इसे सर्वात्मभाव की सिद्धि प्राप्त होनी चाहिए।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।। गीता 5/7

गीता के आठवें अध्याय में परमदिव्य पुरुष (ईश्वर) के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि ईश्वर सर्वज्ञ है, अतः उससे कुछ भी अज्ञात नहीं है। वह प्राचीन है और प्राचीन काल से अर्थात् सदा से ही सबका नियन्ता और शासनकर्त्ता है। वह सब जगत् का एकमात्र सर्वाधिकारी शासक है। वह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है और सबका एकमात्र आधार है। उसके अखण्ड अनन्त स्वरूप का चिन्तन करना बहुत कठिन कार्य है। वह स्वयं अत्यन्त तेजस्वी है, इसलिए उसके पास अंधकार नहीं रह सकता।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मेरद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। गीता 8/9

इसी दिव्य परम पुरुष का सबको ध्यान करना चाहिए। प्रयाणकाल में, भक्तियुक्त होकर, भृकुटी में प्राणों को अच्छी प्रकार स्थापित करके, निश्चल मन से जो इसका ध्यान करता है, वह उस दिव्य परम श्रेष्ठ पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तौ योगबलेन चौव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। गीता 8/10

ऐसे समय ओंकार का जप और परमेश्वर का चिन्तन करता हुआ जो शरीर को त्याग कर जाता है, वह निरूसन्देह परमश्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है।

इसी ज्ञानयोग की पुष्टि के लिए गीता कर्मयोग का भी उपदेश देती है, क्योंकि निष्काम भाव से कर्म करने पर ही ज्ञान की प्राप्ति होती है तभी उस ज्ञान से परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। अब यहाँ कर्मयोग का उल्लेख किया जा रहा है।

कर्मयोग

गीता के तीसरे अध्याय में कर्मयोग का वर्णन किया गया है। गीता में कहा है कि मनुष्य में कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एक क्षण भी मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। गीता 3/5

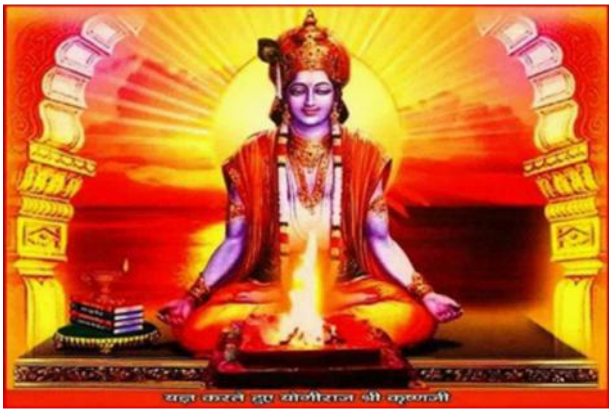

वह इच्छा से करे, अनिच्छा से करे, स्वभाव से करे अथवा कैसी भी वृत्ति से करे, उससे कर्म होना ही है। कुछ भी करो, कर्म छूटता नहीं। मनुष्य स्तब्ध रहा तो भी उस समय उससे स्तब्ध रहने का कर्म होता है। मनुष्य का शरीर स्तब्ध रखा गया, तो भी उसके मन के व्यापार बन्द नहीं होते, वह मन से मनन करके अनेक कर्म करता रहता है। निद्रा लेने का कर्म होता ही है तथापि उसमें स्वप्न आने लगे, तो वह स्वप्न देखने का भी कर्म करता है। यह कर्म कैसे रोका जाए? और यह सब न हुआ, ऐसा भी क्षणभर के लिए मान लीजिए; परन्तु हर एक प्राणी जीवित रहने का कार्य तो करता ही है। श्वास–प्रश्वास, हृदय की धड़कन, आँखों का खोलना और मूंदना, ये कर्म शरीर के स्वभाव से ही होते हैं; इसके अतिरिक्त शरीर का जीर्ण होना, रोगी होना, निरोग रहना आदि कर्म होते हैं। अतः मनुष्य का कर्मों का प्रारम्भ न करने का निश्चय और कर्मों के त्याग करने का निश्चय ये दोनों निश्चय अव्यवहार्य है। कर्म न करना तो एक क्षणमात्र भी संभवनीय नहीं है। मन से इन्द्रियों का संयम करके अनासक्त भाव से कर्म करने वाले की प्रशंसा करते हुए कहा है कि हे अर्जुन! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

यिस्त्वन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। गीता 3/7

इसलिए तू शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपे़क्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर–निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धेदकर्मणः।। गीता 3/8

'नियत कर्म' का आशय दो प्रकार से व्यक्त हो सकता है। एक नियत कर्म वह है जो धर्मशास्त्र के द्वारा प्रत्येक मनुष्य के लिए निश्चित हो चुका है। शम–दम–तप आदि ब्राह्मण के लिए शौर्य, युद्ध से अपलायन, दान आदि क्षत्रिय के लिए; कृषि, गौरक्षा, वाणिज्य वैश्य के लिए और कारीगरी तथा परिचर्यादि कर्म शूद्र के लिए धर्मशास्त्र द्वारा निश्चित किये हुए कर्म हैं। चार वर्णों में उत्पन्न हुए मनुष्यों के इस प्रकार के चतुर्विध कर्म धर्मशास्त्र द्वारा निश्चित है। ये ही कर्म नियत कर्म हैं। अपना वर्ण और अपना आश्रम इनके लिए जो कर्म धर्मशास्त्र से नियत हुआ है, वह उस मनुष्य को सदा करना चाहिए। दूसरा नियत कर्म का आशय 'सहज कर्म' या 'स्वकर्म' से है। सहज कर्म का अर्थ है– 'अपने जन्म के साथ जन्मा हुआ कर्म'। प्रत्येक मनुष्य के साथ उसका कर्म निश्चित रूप से जन्मता है। इसी प्रकार स्वकर्म का अर्थ– 'अपने भाव अर्थात् जन्म के साथ नियत हुआ कर्म'। इन दोनों शब्दों का अर्थ प्रायरू एक ही है।गीता में यज्ञार्थ कर्म करने का भी उपदेश दिया गया है। यज्ञ के लिए जो कर्म किये जाते हैं, उन यज्ञ कर्मों से मनुष्य को बंधन नहीं होता, परन्तु जो दूसरे कर्म मनुष्य करता है उनसे मनुष्य को बन्धन होता है। इस कारण यज्ञ के लिए आसक्ति छोड़कर कर्म कर अर्थात् यज्ञकर्म से मनुष्य बन्धन से छूटता है और यज्ञरहित अन्य कर्मों से मनुष्य को बन्धन होता है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।। गीता 3/9

यहाँ यज्ञ शब्द का केवल होम हवन अर्थ नहीं है। गीता के चौथे अध्याय में श्लोक संख्या 25 से 32 तक विविध यज्ञ कहे हैं। उनमें ये मुख्य हैं– इन्द्रियसंयमयज्ञ, द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि। वेद में सभी श्रेष्ठ कर्मों को यज्ञ कहा है।

"यज्ञौ वै श्रेष्ठतमं कर्म।"

यज्ञों में होमहवन (अग्निहोत्र) भी एक यज्ञ है। मनुष्य के जीवन–व्यवहार में भी क्षणक्षण में यज्ञ होते रहते हैं। मनुष्य का बोलना, चलना, खाना, पीना, सोना और जागना सब यज्ञरूप होना चाहिए।

भगवद्गीता का यही उपदेश प्रारम्भ से अन्त तक स्पष्ट रीति से दिखता है। इस प्रकार से यज्ञकर्म आसक्तिरहित होकर निरूस्वार्थ भाव से करनी चाहिए इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्त्तव्य कर्म

को भलीभाँति करता रह, क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः। गीता 3/19

भक्तियोग

परन्तु ज्ञानयोग एवं कर्मयोग के लिए भक्ति का होना भी आवश्यक है, क्योंकि भक्ति के बिना निष्काम कर्म नहीं हो सकता। जब साधक भक्तियोग के माध्यम से अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पित कर देता है तो उसकी सांसारिक पदार्थों में आसक्ति समाप्त हो जाती है। तभी परमात्मा को जान पाता है। गीता के बारहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ईश भक्ति (उपासना) करने वाले योगियों की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो परमेश्वर के सगुण रूप में मन लगाकर, नित्य परमेश्वर की सगुण भक्ति में तत्पर परमश्रद्धा से ईश्वर की सगुण उपासना करते हैं, वे योगियों में श्रेष्ठ योगी हैं। यह अपना निज मत है अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के मत से 'व्यक्त रूप की उपासना करने वाले योगी श्रेष्ठ होते हैं।'

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्युक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।। गीता 12/2

श्रेष्ठ योगी होने के लिए तीन बाते आवश्यक हैं, वे ये हैं:

1. मनः आवेश्य — ईश्वर में मन लगाना।
2. नित्ययुक्तः — ईश्वर से नित्य योग संबंध करना, कुशलता के साथ कर्म करना।
3. परया श्रद्धया उपेतः — श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होना।

ईश्वर का रूप वही है जो इस विश्व में दिखाई देता है। विश्व का वही रूप परमात्मा का अखण्ड रूप है। यह रूप अनन्त है, उसमें जो अपनी उपासना के लिए योग्य है, वही लिया जावे और उसमें अपना मन पूर्णता के साथ लगाया जावे, जो कुछ किया जाए, वह अटल श्रद्धा से किया जावे। इस तरह जो भक्ति होती है, वही श्रेष्ठ भक्ति है।

निराकार ब्रह्म के स्वरूप का कथन और उसकी उपासना से भगवत्प्राप्ति की बात बतलाते हुए गीता के इसी अध्याय में कहा है कि जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार से वश में करके मन–बुद्धि से परे, सर्वव्यापी, अकथनीय, स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सब में समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

(क) ये ते त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कुटस्थमचलं ध्रुवम्।। 12/3
(ख) सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। गीता 12/4

ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग इन तीनों को एक साथ सिद्ध करने के लिए साधन के रूप में गीता ध्यान योग का विस्तृत वर्णन करती है।

ध्यानयोग

चित्त की चंचलता को दूर करने का सबसे उत्तम मार्ग ध्यानयोग है। ध्यान योग का वर्णन करते हुए गीता के छठे अध्याय में कहते है कि एकान्त में स्थित अकेला चित्त और आत्मा को वश में किये हुए, कामनाओं से रहित किसी भी प्रकार के दबाब से रहित योगी, अपने आप को निरन्तर परमात्मा में लगावे।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। गीता 5/10

वह ध्यान किस स्थान पर किया जाये इसका वर्णन करते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं – पवित्र स्थान में, जिसके ऊपर क्रमशरू कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछा हुआ हो। यह आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा ऐसे आसन पर अपने शरीर को स्थिर करते हुए बैठकर साधना करनी चाहिए। आसन पर सिर और गर्दन एक सीध में रखते हुए चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तरूकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

(क) शुचौ देशे प्रतिष्ठाय स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चौलाजिनकुशोत्तम्।। गीता 6/11
(ख) तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंजयाद्योगमात्मविशुद्धये।।
(ग) समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। गीता 6/12–13

सीधे बैठकर अपनी दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करते हुए ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से साधक का मन सहज रूप से एकाग्र हो जाता है। ध्यानयोग के लिए उपयुक्त आहार–विहार तथा शयनादि नियम और उनके फल का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि हे अर्जुन! योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न तो बहुत कम खाने वाले का होता तथा यह योग न तो ज्यादा सोने वाले का और न सदा जागते रहने वाले का सिद्ध होता है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चौकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। गीता 6/16

योगसाधक का आहार–विहार उचित होना चाहिए। उसकी सभी क्रियाएँ यथायोग्य होनी चाहिए। उसका सोना, जागना भी समय पर होना चाहिए क्योंकि जो साधक इन बातों का पालन करता है उसके लिए योगमार्ग दुःखनाशक होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। गीता 6/17

ध्यानयोग का फल के बारे में बतलाते हुए गीता में कहा गया है कि वश में किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्मा को निरन्तर मुझ परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझमें रहने वाली परमानन्द की पराकाष्ठा रूप शान्ति को प्राप्त होता है।

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।। गीता 6/15

यही अन्तिम उच्चतम अवस्था है। ध्यानयोग के अन्तिम स्थिति को प्राप्त हुए पुरुषों के लक्षण के बारे में कहा गया है कि अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण भोगों से स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में योग का फल बताते हुए कहा है कि जो साधक योग का आचरण करता है, जिसका हृदय शुद्ध है, जिसने अपने आपको जीत लिया है, जिसने अपने इन्द्रियों को जीत लिया है और जिसकी आत्मा सब भूतों की आत्मा बनी है, वह कर्म करता हुआ भी अलिप्त रहता है।

अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपानं तथाऽपरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।4.29।।

दूसरे कितने ही प्राणायामके परायण हुए योगी लोग अपानमें प्राणका पूरक करके, प्राण और अपानकी गति रोककर फिर प्राणमें अपानका हवन करते हैं; तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणों का प्राणों में हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्ननि न लिप्यते।। गीता 5/7

इस प्रकार हम देखते है कि 'गीता' योगशास्त्र ही है। इसके सभी अध्यायों में योग की विस्तृत चर्चा मिलती है। इसमें योग साधक के लिए विभिन्न योगमार्गों का वर्णन किया गया है, जिसके अनुरूप प्रत्येक मनुष्य कोई एक मार्ग को अपनाकर परम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँच सकता है।

निष्कर्ष

श्रीमद्भागवत गीता संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। भारतीय जीवन दर्शन धर्म अध्यात्म साहित्य संस्कृ ति मानवीय आचार संहिता, राजनीति सबकुछ इसमें भरे पड़े हैं। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, योग, संयम, यम नियम, आसान, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धर्म, सदाचार सुन्दर उपदेश मानवों को दिया गया है। योग का वर्णन भगवतगीता में आरंभ से अंत तक किया गया है। यह योग का महत्वपूर्ण ग्रंथ है अतः कहा जा सकता है कि भगवद गीता के उपदेशों को अगर मनुष्य पूर्ण रूप से चरितार्थ या अपने जीवन में स्वीकार करता है तो वह जीवन के परम लक्ष्य को पाकर अपना जीवन सार्थक करने में वह स्वयं सक्षम, मोक्ष को प्राप्त करता है।

संदर्भ सूची

1. https:@@www.scotbuzz.org@2018@04@Shrimad&Bhagavad&Gita-html#:~:teÛt¾%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%80%E0%A4%AE%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%AD%E0%A4% 97%E0%A4%B5%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%97%E0%A5%80%E0%A4%A4%E0%A4%BE%20%E0%A4%95%E0%A4%BE%20%E0%A4%AA%E0%A4% B0%E0%A4%BF%E0%A4%9A%E0%A4%AF]%E0%A4%B0%E0%A5%82%E0%A4%AA%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%AA%E0%A5%8D% E0%A4%A4%20%E0%A4%B9%E0%A5%8B%E0%A4%A4%E0%A5%80%20%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A5%A4
2. श्रीमद् भागवत गीता 4/1–107,
3. श्रीमद् भागवत गीता 2/48–84,
4. श्रीमद् भागवत गीता 2/50–85,
5. श्रीमद् भागवत गीता 6/23–134,
6. श्रीमद् भागवत गीता 7/6– 144
7. श्रीमद् भागवत गीता 2/20–78
8. श्रीमद् भागवत गीता 2/24–79
9. श्रीमद् भागवत गीता 5/7–109
10. श्रीमद् भागवत गीता 8/9–154
11. श्रीमद् भागवत गीता 8/10–154

12. श्रीमद् भागवत गीता 3 / 5—96

13. श्रीमद् भागवत गीता 3 / 7—96

14. श्रीमद् भागवत गीता 3 / 8 —96

15. श्रीमद् भागवत गीता 3 / 9—97

16. श्रीमद् भागवत गीता 3 / 19—99

17. श्रीमद् भागवत गीता 12 / 2—290

18. श्रीमद् भागवत गीता 12 / 3,4

18. श्रीमद् भागवत गीता 5 / 10—109

20. श्रीमद् भागवत गीता 6 / 11—133

21. श्रीमद् भागवत गीता 6 / 12,13—133

22. श्रीमद् भागवत गीता 6 / 16—133,17—134

23. श्रीमद् भागवत गीता 6 / 15—133

24. श्रीमद् भागवत गीता 5 / 7—109

25. https:@@hindi.webdunia.com@sanatan&dharma&article@bhagwad&gita&fact& 117021100035&1-html

26. https:@@hi.wikipedia.org@wiki@%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0% A4%B0%E0%A5%80%E0%A4%AE%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E 0%A4%AD%E0%A4% 97%E0%A4%B5%E0%A4%A6%E0%A5%8D% E0%A4%97%E0%A5%80%E0%A4%A4%E0%A4%BE

27. https:@@www.google.com@search\q¾Sant$Shri$Asaramjibapu$aashram$Geeta&sÛsrf ¾ ALiCzsY&0RbvVqtNl7rrXNGMgJYQAV9h6w:1657264630839&source¾ln

27. https:@@www.google.com@search\q¾Sant$Shri$Asaramjibapu$aashram$ Geeta&sÛsrf¾ALiCzsY&0RbvVqtNl7rrXNGMgJYQAV9h6w:1657264630839& source¾ln

29. https:@@www.scotbuzz.org@2018@03@geeta&mein&yog&ka&svaroop-html

****